द्रव्यसंग्रह

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण

01) मंगलाचरण

छह-द्रव्य अधिकार

02) जीव द्रव्य के नव अधिकार
03) जीवत्व का लक्षण
04) उपयोग का वर्णन
05) ज्ञानोपयोग के भेद
06) उभयनय से उपयोग का लक्षण
07) जीव अमूर्तिक है
08) जीव कर्ता है
09) जीव भोक्ता है
10) जीव स्वदेह बराबर है
11) जीव संसारी है
12) चौदह जीव समास
13) उभयनय से संसारी जीव का स्वरूप
14) सिद्ध और ऊर्ध्वगमन का स्वरूप
15) अजीव द्रव्य और उनमें मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य
16) पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें
17) धर्म द्रव्य का स्वरूप
18) अधर्म द्रव्य का स्वरूप
19) आकाश द्रव्य का स्वरूप
20) लोकाकाश-अलोकाकाश का स्वरूप
21) कालद्रव्य का स्वरूप
22) काल द्रव्य की संख्या
23) द्रव्य और अस्तिकाय के भेद
24) अस्तिकाय का स्वरूप और नाम की सार्थकता
25) द्रव्यों की प्रदेश संख्या
26) पुद्गल का परमाणु अस्तिकाय है
27) प्रदेश का लक्षण और उसकी योग्यता

सात-तत्त्व अधिकार

28) सात तत्त्व
29) भावास्रव और द्रव्यास्रव
30) भावास्रव के भेद
31) द्रव्यास्रव का स्वरूप और भेद
32) भावबंध और द्रव्यबंध
33) बन्ध के भेद और कारण
34) भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप
35) भावसंवर के भेद
36) निर्जरा का स्वरूप
37) मोक्ष का स्वरूप और उसके भेद
38) पुण्य और पाप पदार्थ

मोक्ष-अधिकार

39) व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग
40) आत्मा ही निश्चयनय से मोक्ष मार्ग है

41) व्यवहार सम्यग्दर्शन
42) सम्यग्ज्ञान का स्वरूप
43) दर्शनोपयोग का स्वरूप
44) दर्शन और ज्ञान का क्रम
45) व्यवहार सम्यक्चारित्र और उसके भेद
46) निश्चयचारित्र का लक्षण
47) ध्यानाभ्यास की प्रेरणा
48) ध्यान का उपाय
49) ध्यान के योग्य मंत्र
50) अरिहंत परमेष्ठी का लक्षण
51) सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप
52) आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप
53) उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप
54) साधु परमेष्ठी का स्वरूप
55) निश्चयध्यान का लक्षण
56) परमध्यान का लक्षण
57) ध्यान का कारण
58) ग्रन्थकर्ता का लघुता प्रकाशन

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवन्नेमिचन्द्र-प्रणीत

श्री

द्रव्यसंग्रह

मूल सौरसेणी प्राकृत गाथा और ब्रह्मदेव-सूरि (वि० सं० की १२वीं शताब्दी) कृत टीका सहित

आभार : पद्यानुवाद : आ. डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिराने वाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-द्रव्यसंग्रह नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-नेमिचंद्र-देव विरचितं ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करने वाला यह शास्त्र द्रव्यसंग्रह नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथने वाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीनेमिचंद्रदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

॥ श्रोतार: सावधानतया श्रृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

(देव वंदना)

सुध्यान में लवलीन हो जब, घातिया चारों हने ।
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर अनेकों, भव्य निज सम कर लिये ।
रविज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर! मेरे भी हिये ॥

(शास्त्र वंदना)

स्याद्वाद, नय, षट् द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड़कर्म चेतन बंध का, अरु कर्म के अवसान का ॥

कहकर स्वरूप यथार्थ जग का, जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिनवाणी माँ को, वंदना शत बार है ॥
(गुरु वंदना)
नि:संग हैं जो वायुसम, निर्लेप हैं आकाश से ।
निज आत्म में ही विहरते, जीवन न पर की आस से ॥
जिनके निकट सिंहादि पशु भी, भूल जाते क्रूरता ।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता ॥
शुद्धं प्रबुद्धं वसुकर्ममुक्तं,
निःसीमज्ञानादिकशक्तियुक्तम् ।
भव्येषु नन्द्यं भुवनेषु वन्द्यं,
अजितं जिनेशं प्रणमामि नित्यम् ॥ब्र.दे.सू.॥
प्रणम्य परमात्मानं सिद्धं त्रैलोक्यवन्दितं,
स्वाभाविक चिदानंदस्वरूपं निर्मलाव्ययम् ॥१॥
शुद्धजीवादि द्रव्याणां देशकं च जिनेश्वरं,
द्रव्यसंग्रहसूत्राणां वृत्तिं वक्ष्ये समासतः ॥२॥ युगमं
अन्वयार्थ : स्वाभाविक ज्ञान-आनन्दस्वरूप (केवलज्ञानी-अनन्तसुखी), निर्मल (कर्ममल रहित), अविनाशी शुद्ध जीव आदि द्रव्यों के उपदेशक, जिनेश्वर (गणधर आदि कषायविजेता जिनों के स्वामी), त्रिलोक-वन्दित (ऊर्ध्व, मध्य, अधोलोकवर्ती जीवों से वन्दनीक) सिद्ध परमात्मा को नमस्कार करके सूत्र (बहुत अर्थ को थोड़े शब्दों द्वारा प्रतिपादन करना) रूप द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ की मैं (ब्रह्मदेव) संक्षेप से व्याख्या करूँगा।

मंगलाचरण

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥1॥
कहे जीव अजीव जिन जिनवरवृषभ ने लोक में ।
वे वंद्य सुरपति वृन्द से बंदन करूं कर जोर मैं ॥१॥
अन्वयार्थ : [जेण जिणवरवसहेण] जिन जिनवर वृषभ ने [जीवं अजीवं दव्वं] जीव और अजीव द्रव्य को [णिद्दिट्ठं] कहा है [देविंदविंदवंदं] देवेन्द्रों के समूह से वन्दनीय हैं [तं] उनको [सव्वदा] सदा [सिरसा] मस्तक से [वंदे] मैं नमस्कार करता हूँ।

जीव द्रव्य के नव अधिकार

जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥2॥
जीव कर्ता भोक्ता अर अमूर्तिक उपयोगमय ।
अर सिद्ध भवगत देहमित निजभाव से ही ऊर्ध्वगत ॥२॥
अन्वयार्थ : [सो] वह (आत्मा) जीव उपयोगमयी, अमूर्तिक, कर्ता, स्वदेह परिमाण रहने वाला, भोक्ता, संसारी, सिद्ध और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है ।

जीवत्व का लक्षण

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणो य

ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदोदु चेदणाजस्स ॥3॥
जो सदा धारें श्वास इन्द्रिय आयु बल व्यवहार से ।
वे जीव निश्चय जीव वे जिनके रहे नित चेतना ॥३॥
अन्वयार्थ : [ववहारा] व्यवहारनय से [जस्स] जिसके [तिक्काले] तीनों कालों में [इंदियबलमाउ य आणपाणो] इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये [चदुपाणा] चार प्राण [दु] तथा [णिच्छय-णयदो] निश्चय नय से जिसके [चेदणा] चेतना हो [सो जीवो] वह जीव है।

उपयोग का वर्णन

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥4॥
उपयोग दो हैं ज्ञान-दर्शन चार दर्शन जानिये ।
चक्षु चक्षु अवधि केवल नाम से पहिचानिये ॥४॥
अन्वयार्थ : [उवओगो दुवियप्पो] उपयोग दो प्रकार का है [दंसणणाणं] दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग [च] तथा [दंसणं चदुधा] दर्शनोपयोग चार प्रकार का [चक्खु अचक्खू ओही अध केवलं दंसणं] चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन [णेयं] जानना चाहिए ।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणी
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभेयं च ॥5॥
ज्ञान आठ मतिश्रुतावधि ज्ञान भी कुज्ञान भी ।
मन:पर्यय और केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष भी ॥५॥
अन्वयार्थ : [मदिसुदओही अणाणणाणाणि] मति, श्रुत, अवधि ये तीनों अज्ञान/ मिथ्याज्ञानरूप और ज्ञान/सम्यग्ज्ञानरूप हैं तथा [मणपजवकेवलमवि] मनःपर्यय और केवलज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप ही हैं इस तरह यह सभी [अट्ठवियप्पं णाणं] आठ प्रकार का ज्ञान है [च] और [पच्चक्ख परोक्ख भेयं] प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से वह ज्ञान दो प्रकार का भी है ।

उभयनय से उपयोग का लक्षण

अट्ठचदुणाण दंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥6॥
सामान्यतः चऊ-आठ दर्शन-ज्ञान जिय लक्षण कहे ।
व्यवहार से पर शुद्धनय से शुद्धदर्शन-ज्ञान हैं ॥६॥
अन्वयार्थ : [ववहारा] व्यवहार नय से [अट्ठणाण] आठ प्रकार का ज्ञान [चदुदंसण] चार प्रकार का दर्शन [सामण्णं] सामान्य से [पुण] और [सुद्धणया] शुद्ध नय से [सुद्धं दंसणं णाणं] शुद्धदर्शन व शुद्धज्ञान [जीवलक्खणं] जीव का लक्षण [भणियं] कहा है ।

जीव अमूर्तिक है

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठणिच्चया जीवे
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥7॥
स्पर्श रस गंध वर्ण जिय में नहीं हैं परमार्थ से ।
अत: जीव अमूर्त मूर्तिक बंध से व्यवहार से ॥७॥
अन्वयार्थ : [णिच्छया] निश्चय से [जीवे] जीव में [पंच वण्ण रस दो गंधा अट्ठ फासा] पाँच वर्ण व पाँच रस, दो गंध तथा आठ स्पर्श [णो] नहीं [संति] हैं [तदो] इसलिए [अमुत्ति] जीव अमूर्तिक है [ववहारा] व्यवहार से [बंधादो] कर्मबन्ध होने के कारण [मुत्ति] जीव मूर्तिक है ।

जीव कर्ता है

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥8॥
चिद्कर्म कर्ता नियत से द्रव कर्म का व्यवहार से ।
शुधभाव का कर्ता कहा है आत्मा परमार्थ से ॥८॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [ववहारदो] व्यवहार से [पुग्गलकम्मादीणं] पुद्गल कर्म-ज्ञानावरणादि का [णिच्छयदो] निश्चय से [चेदणकम्माण] चेतनकर्म (रागद्वेष आदि) का [सुद्धणया] शुद्धनय से [सुद्धभावाणं] शुद्ध भाव (शुद्ध ज्ञान-दर्शन) का [कत्ता] कर्ता है ।

जीव भोक्ता है

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥9॥
कर्मफल सुख-दुक्ख भोगे जीव नय व्यवहार से ।
किन्तु चेतनभाव को भोगे सदा परमार्थ से ॥९॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [ववहारा] व्यवहार से [सुहदुक्खं] सुख-दुःखरूप [पुग्गलकम्मप्फलं] पुद्गल कर्म के फल को [पभुंजेदि] भोगता है [खु] और [णिच्छयणयदो] निश्चयनय से [आदस्स चेदणभावं] आत्मा के चेतनभाव (ज्ञान, दर्शन, सुख आदि) को भोगता है ।

जीव स्वदेह बराबर है

अणुगुरुदेह-पमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा
असमुहदो ववहारा, णिच्चयणयदोअसंखदेसो वा ॥10॥
समुद्धात विन तनमापमय संकोच से विस्तार से ।
व्यवहार से यह जीव असंख्य प्रदेशमय परमार्थ से ॥१०॥

अन्वयार्थ : [चेदा] आत्मा [व्यवहारा] व्यवहार से [असमुहदो] समुद्धात के सिवाय अन्य सब समयों में [उवसंहारप्पसप्पदो] संकोच विस्तार गुण के कारण [अणुगुरुदेहपमाणो] अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर [वा] और [णिच्छयणयदो] निश्चयनय से [असंखदेसो] असंख्यात प्रदेशों वाला (लोक के बराबर असंख्यात प्रदेशी) है ।

जीव संसारी है

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥11॥
भूजलानलवनस्पति अर वायु थावर जीव हैं ।
दो इन्द्रियों से पाँच तक शंखादि सब त्रस जीव हैं ॥११॥

अन्वयार्थ : [पुढविजलतेऊवाऊवणप्फदी] पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक [विविह-थावरेइंदी] ये विविध प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं और [संखादी विग-तिग-चदु पंचक्खा] शंख आदि द्वीन्द्रिय, चींटी आदि त्रीन्द्रिय, भौंरा आदि चतुरिन्द्रिय और मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव [तसजीवा] त्रस जीव [होंति] होते हैं ।

चौदह जीव समास

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे
बादरसुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥12॥
पंचेन्द्रियी संज्ञी-असंज्ञी शेष सब असंज्ञि ही हैं ।

एकेन्द्रियी हैं सूक्ष्म-बादर पर्याप्तकेतर सभी हैं ॥१२॥

अन्वयार्थ : [पंचिंदिय] पंचेन्द्रिय जीव [समणा] मन सहित और [अमणा] मन रहित [णेया] जानना चाहिए । [परे सव्वे] शेष सभी (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव) [णिम्मणा] मन रहित हैं । [एइंदी बादर सुहुमा] एकेन्द्रिय जीव बादर व सूक्ष्म के भेद से दो-दो प्रकार के हैं [सव्वे पज्जत्त य इदरा] ये सभी (सातों प्रकार के जीव) पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं (इस प्रकार ये १४ जीवसमास हो जाते हैं) ।

उभयनय से संसारी जीव का स्वरूप

मग्गणगुणठाणेहिंय, चउदसहिंह-वंतितहअसुद्धणया
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥13॥
भवलीन जिय विध चतुर्दश गुणस्थान मार्गणथान से ।
अशुद्धनय से कहे है पर शुद्धनय से शुद्ध हैं ॥१३॥

अन्वयार्थ : [तह] तथा [संसारी] संसारी जीव [असुद्धणया] अशुद्धनय से [मग्गण गुणठाणेहि चउदसहि] मार्गणा व गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद वाले [हवंति] होते हैं [य] और [सुद्धणया] शुद्धनय से [सव्वे] सभी जीव [सुद्धा] शुद्ध [हु] ही [विण्णेया] जानना चाहिए ।

सिद्ध और ऊर्ध्वगमन का स्वरूप

णिक्कम्मा अट्ठगुणा,किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥14॥
उत्पादव्ययसंयुक्त अन्तिम देह से कुछ न्यून हैं ।
लोकाग्रथित निष्कर्म शाश्वत अष्टगुणमय सिद्ध हैं ॥१४॥

अन्वयार्थ : [णिक्कम्मा] आठकर्मों से रहित [अट्ठगुणा] आठगुणों से सहित [चरमदेहदो किंचूणा] अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाले [लोयग्गठिदा] (ऊर्ध्वगमन स्वभाव से) लोक के अग्रभाग में स्थित [णिच्चा] विनाश रहित और [उप्पादवएहिं संजुत्ता] उत्पाद व व्यय से संयुक्त हैं वे [सिद्धा] सिद्ध भगवान् हैं ।

अजीव द्रव्य और उनमें मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य

अज्जीवो पुणणेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥15॥
मूर्त पुद्गल किन्तु धर्माधर्म नभ अर काल भी ।
मूर्तिक नहीं है तथापि ये सभी द्रव्य अजीव हैं ॥१५॥

अन्वयार्थ : [पुण] और [पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो] पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँचों को [अज्जीवो] अजीव द्रव्य [णेयो] जानना चाहिए [रूवादिगुणो पुग्गलमुत्तो] रूप (वर्ण, स्पर्श, रस, गंध) आदि गुण वाला पुद्गल मूर्तिक द्रव्य है [हु] परन्तु (रूपादि गुण वाले न होने से) [सेसा] शेष (पाँच द्रव्य) [अमुत्ति] अमूर्तिक हैं ।

पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया
उज्जोदादवसहिया, पुग्गल दव्वस्स पज्जाया ॥16॥
थूल सूक्षम बंध तम संस्थान आतप भेद अर ।
उद्योत छाया शब्द पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ॥१६॥

अन्वयार्थ : [सदो] शब्द [बंधो] बन्ध [सुहुमो] सूक्ष्म [थूलो] स्थूल [संठाण-भेद-तमछाया] संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया [उज्जोदादव-

सहिया] उद्योत व आतप सहित [पुग्गलदव्वस्स पज्जाया] पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं ।

धर्म द्रव्य का स्वरूप

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥17॥
स्वयं चलती मीन को जल निमित्त होता जिसतरह ।
चलते हुए जिय-पुद्गलों को धरमदरव उसीतरह ॥१७॥

अन्वयार्थ : [गइपरिणयाण] गमन करते हुए [पुग्गल-जीवाण] पुद्गल और जीवों के [गमणसहयारी] जो गमन में सहकारी/निमित्त है [धम्मो] वह धर्मद्रव्य है [जह तोयं मच्छाणं] जैसे जल मछलियों के गमन में सहकारी है [सो] वह धर्मद्रव्य [अच्छंता] ठहरने वाले जीव या पुद्गल को [णेव णेई] नहीं ले जाता है ।

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥18॥
छाया निमित्त ज्यों गमनपूर्वक स्वयं ठहरे पथिक को ।
अधरम त्यों ठहरने में निमित्त पुद्गल-जीव को ॥१८॥

अन्वयार्थ : [ठाणजुदाण पुग्गलजीवाण] ठहरे हुए पुद्गल और जीवों के [ठाण सहयारी] ठहरने में सहकारी कारण [अधम्मो] अधर्मद्रव्य है [जह पहियाणं छाया] जैसे पथिकों के ठहरने में छाया सहकारी कारण है [सो] वह अधर्मद्रव्य [गच्छंता] गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को [णेव धरई] नहीं धरता / ठहराता है ।

आकाश द्रव्य का स्वरूप

अवगासदाण जोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥19॥
आकाश वह जीवादि को अवकाश देने योग्य जो ।
आकाश के दो भेद हैं जो लोक और अलोक हैं ॥१९॥

अन्वयार्थ : जो [जीवादीणं] जीव आदि समस्त द्रव्यों के [अवगासदाण-जोग्गं] अवकाश देने में समर्थ है उसे [आयासं] आकाशद्रव्य [वियाण] जानो वह [जेण्ह] जिनेन्द्रदेव ने [लोगागासं अल्लोगागास] लोकाकाश और अलोकाकाश [इदि] इस प्रकार [दुविहं] दो प्रकार का कहा है ।

लोकाकाश-अलोकाकाश का स्वरूप

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥20॥
काल धर्माधर्म जीव पुद्गल रहें जिस क्षेत्र में ।
वह क्षेत्र ही बस लोक है अवशेष क्षेत्र अलोक है ॥२०॥

अन्वयार्थ : [जावदिये आयासे] जितने आकाश में [धम्माधम्मा] धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य [कालो] कालद्रव्य [पुग्गलजीवा] पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य [संति] हैं [सो लोगो] वह लोकाकाश है [य] तथा [तत्तो परदो] उसके आगे/बाहर [अलोगो उत्तो] अलोकाकाश कहा गया है ।

कालद्रव्य का स्वरूप

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो

परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो व परमट्ठो ॥21॥
परिवर्तन रूप परिणामादि लक्षित काल जो ।
व्यवहार वह परमार्थ तो बस वर्तनामय जानिये ॥२१॥
अन्वयार्थ : [दव्व-परिवट्टरूवो] जो द्रव्यों के परिवर्तनरूप और [परिणामादी-लक्खो] परिणाम यानि समय आदि पर्याय लक्षण वाला है [सो ववहारो कालो] वह व्यवहारकाल है [य] और [वडणलक्खो] जिसका वर्तना ही लक्षण है [परमट्ठो] वह परमार्थ काल अर्थात् निश्चयकाल [हवेइ] होता है ।

काल द्रव्य की संख्या

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥22॥
जानलो इस लोक को जो एक-एक प्रदेश पर ।
रत्नराशिवत् जड़े वे असंख्य कालाणु दरब ॥२२॥
अन्वयार्थ : [इक्किक्के लोयायासपदेसे] एक-एक लोकाकाश के प्रदेशों पर [रयणाणं रासी इव] रत्नों की राशि के समान [इक्किक्का] एक-एक [कालाणू] कालद्रव्यरूप अणु [ठिया] स्थित है [ते] वे कालाणु [हु] निश्चय से [असंख-दव्वाणि] असंख्यात द्रव्यरूप हैं ।

द्रव्य और अस्तिकाय के भेद

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥23॥
इसतरह ये छह दरब जो जीव और अजीवमय ।
कालबिन बाकी दरब ही पंच अस्तिकाय हैं ॥२३॥
अन्वयार्थ : [एवं] इस प्रकार [जीवाजीवप्पभेददो] जीव और अजीव के भेद से [इदं दव्वं] यह द्रव्य [छब्भेयं उत्तं] छह भेद वाला कहा गया [दु] परन्तु [कालविजुत्तं] कालद्रव्य को छोड़कर [पंच अस्थिकाया णादव्वा] शेष पाँच द्रव्यों को अस्तिकाय जानना चाहिए ।

अस्तिकाय का स्वरूप और नाम की सार्थकता

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया या अत्थिकाया य ॥24॥
कायवत बहुप्रदेशी हैं इसलिए तो काय है ।
अस्तित्वमय हैं इसलिए अस्ति कहा जिनदेव ने ॥२४ ॥
अन्वयार्थ : [जदो एदे संति] क्योंकि ये पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश पाँच द्रव्य हैं [तेण] इसलिए [अत्थि] अस्तित्ववान/ विद्यमान हैं [त्ति] ऐसा [जिणवरा] जिनेश्वरदेव [भणंति] कहते हैं [य] और [जम्हा काया इव] क्योंकि ये काय/शरीर के समान [बहुदेसा] बहुप्रदेशी हैं [तम्हा काया] इसलिए ये काय हैं [य] और अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से [अस्थिकाया] पाँचों द्रव्य अस्तिकाय होते हैं ।

द्रव्यों की प्रदेश संख्या

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगोणतेण सो काओ ॥25॥
हैं अनंत प्रदेश नभ जिय धर्म अधर्म असंख्य हैं ।
सब पुद्गलों के त्रिविध एवं काल का बस एक है ॥२५॥
अन्वयार्थ : [जीवे धम्माधम्मे] एक जीवद्रव्य में, धर्म व अधर्मद्रव्य में [असंखा] असंख्यात प्रदेश हैं [आयासे] आकाशद्रव्य में [अणंत] अनन्त प्रदेश हैं [मुत्ते] मूर्त पुद्गलद्रव्य में [तिविह पदेसा] संख्यात, असंख्यात और अनन्त ये तीनों प्रदेश [होंति] होते हैं [कालस्स एगो]

कालद्रव्य का एक ही प्रदेश है [तेण] इस कारण से [सो काओ ण] वह कायवान्/बहुप्रदेशी नहीं है ।

पुद्गल का परमाणु अस्तिकाय है

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि

बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥26॥

यद्यपि पुद्गल अणु है मात्र एक प्रदेशमय ।

पर बहुप्रदेशी कहें जिन स्कन्ध के उपचार से ॥२६॥

अन्वयार्थ : [एयपदेसो वि अणू] एक प्रदेश वाला भी पुद्गलरूप अणु [णाणा-खंधप्पदेसदो] अनेक स्कन्धरूप प्रदेशों का कारण होने से [बहुदेसो] बहुप्रदेशी [होदि] होता है [य] और [तेण] इसी कारण से [सव्वण्हू] सर्वज्ञदेव परमाणु को [उवयारा काओ] उपचार/व्यवहार से कायवान/बहुप्रदेशी [भणंति] कहते हैं ।

प्रदेश का लक्षण और उसकी योग्यता

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु वट्ठद्धं

तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥27॥

एक अणु जितनी जगह घेरे प्रदेश कहें उसे ।

किन्तु एक प्रदेश में ही अनेक परमाणु रहें ॥२७॥

अन्वयार्थ : [जावदियं आयासं] जितना आकाश [अविभागी-पुग्गलाणुवट्ठद्धं] पुद्गल के अविभाजित परमाणु से व्याप्त/रोका गया है [तं] उसको [खु] निश्चय से [सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं] सर्व परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ [पदेसं] प्रदेश [जाणे] जानना चाहिए ।

सात तत्त्व

आसव बंधणसंवर-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे

जीवाजीव-विसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥28॥

बंध आस्रव पुण्य-पापरु मोक्ष संवर निर्जरा ।

विशेष जीव अजीव के संक्षेप में उनको कहें ॥२८॥

अन्वयार्थ : [जीवाजीवविसेसा] जीव और अजीव के विशेष/भेद [सपुण्ण-पावा] पुण्य और पाप सहित [जे] जो [आसव-बंधण-संवर-णिज्जर-मोक्खा] आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं [ते वि] उनको भी [समासेण] संक्षेप से [पभणामो] कहता हूँ ।

भावास्रव और द्रव्यास्रव

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेयो

भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥29॥

कर्म आना द्रव्य आस्रव जीव के जिस भाव से ।

हो कर्म आस्रव भाव वे ही भाव आस्रव जानिये ॥२९॥

अन्वयार्थ : [अप्पणो] आत्मा के [जेण] जिस [परिणामेण] परिणाम से [कम्मं आसवदि] कर्म आता है [स जिणुत्तो] वह जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ [भावासवो] भावास्रव [विण्णेओ] जानना चाहिए और [कम्मासवणं] ज्ञानावरणादि कर्मों का आना [परो होदि] वह उस भावास्रव से भिन्न द्रव्यास्रव होता है ।

भावास्रव के भेद

मिच्छत्ताविरदिपमाद - जोगकोहादओथ विण्णेया

पण पण पण दह तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥30॥

मिथ्यात्व-अविरति पाँच-पाँचरू पंचदश परमाद हैं ।
त्रय योग चार कषाय ये सब आस्रवों के भेद हैं ॥३०॥

अन्वयार्थ : [अथ] अब [पुव्वस्स] पहले भावास्रव के [मिच्छत्ताविरदि-पमादजोगकोधादओ] मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग व क्रोधादि कषाय भेद हैं [दु] और उनके [कमसो] क्रम से [पण-पण] पाँच, पाँच [पणदह] पंद्रह [तिय चदु] तीन और चार [भेदा] भेद [विण्णेया] जानने चाहिए ।

द्रव्यास्रव का स्वरूप और भेद

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि
दव्वासवो च णेओ, अणेयभेयो जिणक्खादो ॥31॥
ज्ञानावरण आदिक करम के योग्य पुद्गल आगमन ।
है द्रव्य आस्रव विविधविध जो कहा जिनवर देव ने ॥३१॥

अन्वयार्थ : [णाणावरणादीणं जोग्गं] ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य [जं पुग्गलं] जो पुद्गलद्रव्य [समासवदि] आता है अर्थात् कर्मरूप होता है [स] वह [जिणक्खादो] श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया [अणेयभेओ] अनेक भेद वाला [दव्वासवो] द्रव्यास्रव [णेओ] जानना चाहिए ।

भावबंध और द्रव्यबंध

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो
कम्मदपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥32॥
जिस भाव से हो कर्मबंधन भावबंध है भाव वह ।
द्रवबंध बंधन प्रदेशों का आत्मा अर कर्म के ॥३२॥

अन्वयार्थ : [जेण] जिस [चेदण-भावेण] आत्मा के परिणाम से [कम्म बज्झदि] कर्म बँधता है [सो] वह [भावबंधो] भाव बन्ध है [दु] और [कम्मादपदेसाणं] कर्म व आत्मप्रदेशों का [अण्णोण-पवेसणं] परस्पर एकमेक हो मिलकर रहना [इदरो] उस भावबन्ध से अन्य, द्रव्यबन्ध है ।

बन्ध के भेद और कारण

पयडिट्ठिदिअणुभाग-प्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥33॥
बंध चार प्रकार प्रकृति प्रदेश थिती अनुभाग ये ।
योग से प्रकृति प्रदेश अनुभाग थिती कषाय से ॥३३॥

अन्वयार्थ : [पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा] प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से [बंधो] बन्ध [चदुविहो] चार प्रकार का होता है, उनमें से [पयडिपदेसा] प्रकृति और प्रदेश बन्ध तो [जोगा] मन-वचन-कायरूप योग से होते हैं [दु] तथा [ठिदि-अणुभागा] स्थिति और अनुभागबन्ध [कसायदो] कषाय से [होंति] होते हैं ।

भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ॥34॥
कर्म रुकना द्रव्य संवर और उसके हेतु जो ।
निज आत्मा के भाव वे ही भाव संवर जानिये ॥३४॥

अन्वयार्थ : [जो] जो [चेदणपरिणामो] आत्मा का परिणाम [कम्मस्सासव-णिरोहणे] कर्म के आस्रव के रोकने में [हेदू] कारण है [सो] वह

[खलु] निश्चय से [भावसंवरो] भाव संवर है तथा [दव्वासव-रोहणे] द्रव्यास्रव का रुकना [अण्णो] अन्य है अर्थात् भाव संवर से भिन्न द्रव्य संवर है ।

भावसंवर के भेद

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपिहा परीसहजओ य
चारित्तं बहुभेयं, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥35॥
व्रत समिति गुप्ती धर्म परिषहजय तथा अनुप्रेक्षा ।
चारित्र भेद अनेक वे सब भावसंवररूप है ॥३५॥

अन्वयार्थ : [वदसमिदीगुत्तीओ] व्रत, समिति, गुप्ति, [धम्माणुपेहा] धर्म, अनुप्रेक्षा, [परीसहजओ] परीषहजय [य] और [बहुभेया] बहुत प्रकार वाला [चारित्तं] चारित्र ये सभी [भावसंवरविसेसा] भावसंवर के भेद [णायव्वा] जानना चाहिए ।

निर्जरा का स्वरूप

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥36॥
द्रव निर्जरा है कर्म झरना और उसके हेतु जो ।
तपरूप निर्मल भाव वे ही भावनिर्जर जानिये ॥३६॥

अन्वयार्थ : [जह कालेण] कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से [भुत्तरसं] जिसका फल भोगा जा चुका है ऐसा [कम्मपुग्गलं] कर्मरूप पुद्गल [जेण भावेण] जिस परिणाम से [सडदि] झड़ता (छूटता) है (वही परिणाम सविपाक भावनिर्जरा है) [य] और [तवेण] तप द्वारा [जेण भावेण] जिस (आत्म) परिणाम से [कम्मपुग्गलं] कर्मरूप पुद्गल [सडदि] झड़ता (छूटता) है (वही परिणाम अविपाक भावनिर्जरा है) तथा [जहकालेण] कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से [य] अथवा [तवेण] तप द्वारा [कम्मपुग्गलं] (ज्ञानावरण आदि) कर्मरूप पुद्गल [सडदि] झड़ता (छूटता) है (वह सविपाक-द्रव्यनिर्जरा और अविपाक-द्रव्यनिर्जरा) [इदि णिज्जरा दुविहा] इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की [णेया] जाननी चाहिए ।

मोक्ष का स्वरूप और उसके भेद

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥37॥
भावमुक्ती कर्मक्षय के हेतु निर्मलभाव हैं ।
अर द्रव्यमुक्ती कर्मरज से मुक्त होना जानिये ॥३७ ॥

अन्वयार्थ : [हु] निश्चय से [अप्पणो] आत्मा का [जो परिणामो] जो परिणाम [सव्वस्स कम्मणो] समस्त कर्मों के [खयहेदू] क्षय का कारण है [स] वह [भावमुक्खो] भावमोक्ष है [य] और [कम्मपुहभावो] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का पृथक् हो जाना [दव्वविमोक्खो] द्रव्यमोक्ष [णेयो] जानना चाहिए ।

पुण्य और पाप पदार्थ

सुह असुह भावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा
सादं सुहउणाणं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥38॥
शुभाशुभ परिणामयुत जिय पुण-पाप सातावेदनी ।
शुभ आयु नामरु गोत्र पुण अवशेष तो सब पाप है ॥३८॥

अन्वयार्थ : [खलु] निश्चय से [सुहअसुहभावजुत्ता] शुभ व अशुभ भाव से युक्त [जीवा] जीव [पुण्णं पावं] पुण्य और पापरूप [हवंति] होते हैं [सादं] सातावेदनीय [सुहाउ णामं गोदं] शुभायु, शुभनाम तथा उच्चगोत्र ये सब कर्म प्रकृतियाँ [पुण्णं] पुण्यरूप हैं [च] और

[पराणि पावं] अन्य शेष सब कर्म प्रकृतियाँ पापरूप हैं ।

व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग

सम्मद्दंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे

ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइयो णिओअप्पा ॥39॥

सम्यग्दरशसद्ज्ञानचारित्र मुक्तिमग व्यवहार से ।

इन तीन मय शुद्धातमा है मुक्तिमग परमार्थ से ॥३९॥

अन्वयार्थ : [ववहारा] व्यवहारनय से [सम्मद्दंसण-णाणं चरणं] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को तथा [णिच्छयदो] निश्चयनय से [तत्तियमइओ] इन तीनों स्वरूप वाले [णिओ अप्पा] निज आत्मा को ही [मोक्खस्स कारणं] मोक्ष का कारण [जाणे] जानो ।

आत्मा ही निश्चयनय से मोक्ष मार्ग है

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि

तम्हा तत्तियमइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥40॥

आत्मा से भिन्न द्रव्यों में रहें न रत्नत्रय ।

बस इसलिए ही रतनत्रयमय आतमा ही मुक्तिमग ॥४०॥

अन्वयार्थ : [रयणत्तयं] रत्नत्रयरूप धर्म [अप्पाणं मुइत्तु] आत्मा को छोड़कर [अण्णदवियम्हि] अन्य द्रव्य में [ण वट्टइ] नहीं रहता [तम्हा] इस कारण से [तत्तियमइओ आदा] इन तीनों मय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र सहित आत्मा ही [हु] निश्चय से [मोक्खस्स कारणं] मोक्ष का कारण [होदि] होती है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु

दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥41॥

जीवादि का श्रद्धान समकित जो कि आत्मस्वरूप है ।

और दुरभिनिवेश विरहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ॥४१॥

अन्वयार्थ : [जीवादीसद्दहणं] जीवादि (सात तत्त्वों) का यथार्थ श्रद्धान करना [सम्मत्तं] सम्यक्त्व है [तं] वह [अप्पणो रूवं] आत्मा का स्वभाव है [तु] और [जम्हि] जिस (सम्यग्दर्शन) के [सदि] होने पर [णाणं खु] ज्ञान निश्चय से [दुरभिणिवेसविमुक्कं] विपरीत अभिप्राय (संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय) से रहित होता हुआ [सम्मं होदि] सम्यक हो जाता है ।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

संसयविमोह विब्भम, विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स

गहणं सम्मं णाणं; सायार-मणेयभेयं तु ॥42॥

संशयविमोहविभरमविरहित स्वपर को जो जानता ।

साकार सम्यग्ज्ञान है वह है अनेकप्रकार का ॥४२॥

अन्वयार्थ : [संसयविमोहविब्भम-विवज्जियं] संशय (अनेक कोटि को स्पर्श करने वाला संदेहात्मक ज्ञान), विपर्यय (वस्तु धर्म के विपरीत परिचय कराने वाला ज्ञान) और अनध्यवसाय (पदार्थ के विषय में कुछ भी निर्णय नहीं होने रूप ज्ञान -- इन तीन दोषों) से रहित [अप्पपरसरूवस्स] अपने आत्मा के तथा पर पदार्थों के स्वरूप का [गहणं] ग्रहण करना [सायारं] साकार/सविकल्प [च] और [अणेयभेयं] अनेक भेद वाला [सम्मणाणं] सम्यग्ज्ञान है ।

दर्शनोपयोग का स्वरूप

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं
अविसेसदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समये ॥43॥
अर्थग्राहक निर्विकल्पक और है अविशेष जो ।
सामान्य अवलोकन करे जो उसे दर्शन जानना ॥४३॥
अन्वयार्थ : [अट्ठे] पदार्थों के विषय में [आयारं] आकार/विकल्प/भेद को [णेव कट्टुं] न करके [जं] जो [अविसेसिदूण] काला-नीला, छोटा-बड़ा, घट-पट आदि विशेषताओं से रहित [भावाणं] पदार्थों का [सामण्णं] सामान्य [गहणं] ग्रहण करना [समए] शास्त्र में [दंसणं] दर्शन [इदि] इस प्रकार [भण्णए] कहा गया है ।

दर्शन और ज्ञान का क्रम

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा
जुगवं जम्हा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥44॥
जिनवर कहें छद्मस्थ के हो ज्ञान दर्शनपूर्वक ।
पर केवली के साथ हो दोनों सदा यह जानिये ॥४४॥
अन्वयार्थ : [छदमत्थाणं] छद्मस्थ जीवों के [दंसणपुव्वं णाणं] दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है [जम्हा] क्योंकि छद्मस्थों के [दुण्णि] दोनों [उवओगा] उपयोग [जुगवं] एक साथ [ण] नहीं होते हैं [तु] किन्तु [केवलिणाहे] केवलीभगवान् में [ते दो वि] वे दोनों ही उपयोग [जुगवं] एक साथ होते हैं ।

व्यवहार सम्यक्चारित्र और उसके भेद

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥45॥
अशुभ से विनिवृत्त हो व्रत समितिगुप्तिरूप में ।
शुभभावमय हो प्रवृत्ती व्यवहारचारित्र जिन कहें ॥४५॥
अन्वयार्थ : [ववहारणया] व्यवहारनय से [असुहादो विणिवित्ती] अशुभ क्रियाओं से निवृत्तिरूप [य] और [सुहे पवित्ति] शुभ क्रियाओं में प्रवृत्तिरूप [जिणभणियं] जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ [चारित्तं जाण] चारित्र जानो [दु] और वह चारित्र [वदसमिदिगुत्तिरूवं] व्रत, समिति और गुप्तिरूप है ।

निश्चयचारित्र का लक्षण

बहिरब्भंतरकिरिया-रोहो भवकारणप्पणासट्ठं
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥46॥
बाह्य अंतर क्रिया के अवरोध से जो भाव हों ।
संसारनाशक भाव वे परमार्थ चारित्र जानिये ॥४६॥
अन्वयार्थ : [भवकारणप्पणासट्ठं] संसार के कारणों का नाश करने के लिए [णाणिस्स] ज्ञानीजीव के [बहिरब्भंतर-किरिया-रोहो] बाह्य तथा आभ्यन्तर क्रियाओं का निरोध [जंजिणुत्तं] जो जिनेन्द्रदेव ने कहा है [तं परमं सम्मचारित्तं] वह परम निश्चय सम्यक्चारित्र है ।

ध्यानाभ्यास की प्ररेणा

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥47॥
अरे दोनों मुक्तिमग बस ध्यान में ही प्राप्त हो ।
इसलिए चित्तप्रसन्न से नित करो ध्यानाभ्यास तुम ॥४७॥

अन्वयार्थ : [जं] जिस कारण से [मुणी] आत्मज्ञानी मुनि [दुविहं पि] दोनों प्रकार के ही [मोक्खहेउं] मोक्ष के कारणों को [झाणे] ध्यान में [णियमा] नियम से [पाउणदि] प्राप्त कर लेता है [तम्हा] उस कारण से [पयत्तचित्ता] प्रयत्नचित्त होते हुए [जूयं] तुम सब [झाणं] ध्यान का [समब्भसह] अच्छे प्रकार से अभ्यास करो ।

ध्यान का उपाय

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥48॥
यदि कामना है निर्विकल्पक ध्यान में हो चित्त थिर ।
तो मोह-राग-द्वेष इष्टानिष्ट में तुम ना करो ॥४८॥

अन्वयार्थ : [विचित्त-झाणप्पसिद्धीए] अनेक प्रकार के ध्यानों की सिद्धि के लिये [जइ चित्तं] यदि चित्त को [थिरंइच्छहि] स्थिर करना चाहते हो तो [इट्ठणिट्ठअट्ठेसु] इष्ट, अनिष्ट पदार्थों में [मुज्झह मा] मोह मत करो [रज्जह मा] राग मत करो और [दुस्सह मा] द्वेष मत करो ।

ध्यान के योग्य मंत्र

पणतीस सोल छप्पण, चदुदुगमेगं च जबह झाएह
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥49॥
परमेष्ठीवाचक एक दो छह चार सोलह पाँच अर ।
पैंतीस अक्षर जपो नित अर अन्य गुरु उपदेश से ॥४९॥

अन्वयार्थ : [गुरूवएसेण] गुरुओं के उपदेश से [परमेट्ठि-वाचयाणं] परमेष्ठियों के वाचक [पणतीस] पैंतीस [सोल] सोलह [छप्पण] छह, पाँच [चदु दुगं] चार, दो [च] और [एगं] एक अक्षर के मन्त्र को तथा [अण्णं च] अन्य भी मन्त्रों को [जवह झाएह] जपो और ध्यान करो ।

अरिहंत परमेष्ठी का लक्षण

णट्ठचदुघाइकम्मो, दंसणसुहणाणवीरियमइयो
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥50॥
नाशकर चऊ घाति दर्शन ज्ञान सुख अर वीर्यमय ।
शुभदेहथित अरिहंत जिन का नित्यप्रति चिन्तन करो ॥५०॥

अन्वयार्थ : [णट्ठ-चदुघाइकम्मो] नष्ट कर दिये हैं चार घातिया कर्म जिन्होंने ऐसे [दंसणसुहणाणवीरियमइओ] अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तज्ञान व अनन्तवीर्य से सहित [सुहदेहत्थो] शुभ, परम औदारिक शरीर में स्थित [सुद्धो अप्पा] अठारह दोषों से रहित शुद्ध, आत्मा [अरिहो] अरिहन्त परमेष्ठी हैं वे [विचिंतिज्जो] विशेष चिन्तन/ध्यान के योग्य हैं ।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा
पुरुसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोय सिहरत्थो ॥51॥
लोकाग्रथित निर्देह लोकालोक ज्ञायक आत्मा ।
आठ कर्म नाशक सिद्ध प्रभु का ध्यान तुम नित ही करो ॥५१॥

अन्वयार्थ : [णट्ठट्ठ-कम्मदेहो] नष्ट हो गए हैं आठकर्म और औदारिक आदि शरीर जिनका [लोयालोयस्स] लोक और अलोक को [जाणओ दट्ठा] जानने देखने वाला [लोयसिहरत्थो] लोक के शिखर पर स्थित [पुरिसायारो] जिस पुरुष देह से मोक्ष हुआ है उस पुरुष के आकार वाला [अप्पा] आत्मा [सिद्धो] सिद्ध परमेष्ठी है उसका [झाएह] ध्यान करो ।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्त-वरतवायारे
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरियो मुणी झेओ ॥52॥
ज्ञान-दर्शन-वीर्य-तप एवं चरित्राचार में ।
जो जोड़ते हैं स्वपर को ध्यावो उन्हीं आचार्य को ॥५२॥
अन्वयार्थ : जो [मुणी] मुनि [दंसणणाणपहाणे] दर्शनाचार और ज्ञानाचार की प्रधानता वाले [वीरिय-चारित्त-वर-तवायारे] वीर्याचार, चारित्राचार व श्रेष्ठ तपाचार में [अप्पं च परं] अपने को व दूसरों को [जुंजइ] जोड़ता/लगाता है [सो आइरिओ] वह आचार्य परमेष्ठी [झेओ] ध्यान करने योग्य है ।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥53॥
रत्नत्रय युत नित निरत जो धर्म के उपदेश में ।
सब साधु जन में श्रेष्ठ श्री उवझाय को वंदन करें ॥५३॥
अन्वयार्थ : [जो] जो [रयणत्तय-जुत्तो] रत्नत्रय से युक्त [णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो] हमेशा मुनि आदि को धर्म का उपदेश करने में निरत/तत्पर हैं [सो जदिवरवसहो] वह मुनिवरों में प्रधान [अप्पा] आत्मा [उवज्झाओ] उपाध्याय परमेष्ठी हैं [तस्स णमो] उनको नमस्कार हो ।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाण समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥54॥
जो ज्ञान-दर्शनपूर्वक चारित्र की आराधना ।
कर मोक्षमारग में खड़े उन साधुओं को है नमन ॥५४॥
अन्वयार्थ : [जो] जो [मुणी] मुनि [मोक्खस्स मग्गं] मोक्ष के मार्गभूत [दंसण-णाणसमग्गं] सम्यग्दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण [णिच्चसुद्ध] सदा शुद्ध अर्थात् रागादि रहित [चारित्तं] चारित्र को [हु] निश्चय से [साधयदि] साधते हैं [सो साहू] वे साधु परमेष्ठी हैं [तस्स णमो] उनको नमस्कार हो ।

निश्चयध्यान का लक्षण

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥55॥
निजध्येय में एकत्व निष्पृहवृत्ति धारक साधुजन ।
चिन्तन करें जिस किसी का भी सभी निश्चय ध्यान है॥५५॥
अन्वयार्थ : [य] और वह [साहू] साधु [जदा] जिस समय [जं किंचिवि] जो कुछ भी [चिंतंतो] चिंतन करता हुआ [एयत्तं] एकाग्रता को [लद्धूण] प्राप्त करके [णिरीहवित्ती] इच्छा रहित [हवे] होता है [तदा] उस समय [तस्स] उस साधु का [तं] वह [णिच्छयं झाणं] निश्चय ध्यान है ऐसा [आहु] तीर्थंकरदेव कहते हैं ।

परमध्यान का लक्षण

मा चिठ्ठह माजंपह, मा चिंतह विंवि जेण होइ थिरो
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥56॥
बोलो नहीं सोचो नहीं अर चेष्टा भी मत करो ।

उत्कृष्टतम यह ध्यान है निज आतमा में रत रहो ॥५६॥

अन्वयार्थ : [किंवि] कुछ भी [चिट्ठह मा] चेष्टा मत करो [जंपह मा] बोलो मत [चिंतह मा] चिन्तन/विचार मत करो [जेण] जिससे [अप्पा अप्पम्मि] आत्मा आत्मा में [रओ] रत होता हुआ [थिरो हवे] स्थिर होवे [इणं एव] यह ही [परं झाणं] परम ध्यान [होइ] होता है ।

ध्यान का कारण

तवसुदवदवं चेदा, झाणरह-धुरंधरो हवे जम्हा

तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होई ॥57॥

व्रती तपसी श्रुताभ्यासी ध्यान में हो धुरंधर ।

निज ध्यान करने के लिए तुम करो इनकी साधना ॥५७॥

अन्वयार्थ : [जम्हा] जिस कारण से [तवसुदवदवं] तप, श्रुत और व्रत वाली [चेदा] आत्मा [झाणरहधुरंधरो] ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने वाली [हवे] होती है [तम्हा] उस कारण से [तल्लद्धीए] उस ध्यान की प्राप्ति के लिये [सदा] हमेशा [तत्तियणिरदा] तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में निरत [होइ] होओ ।

ग्रन्थकर्ता का लघुता प्रकाशन

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा

सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥58॥

अल्प श्रुतधर नेमिचंद मुनि द्रव्यसंग्रह संग्रही ।

अब दोषविरहित पूर्णश्रुतधर साधु संशोधन करें ॥५८॥

अन्वयार्थ : [तणुसुत्तधरेण] अल्पश्रुत को धारण करने वाले [णेमिचंदमुणिणा] मुझ नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा [जं इणं दव्वसंगहं भणियं] जो यह द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ कहा गया है इसको [दोससंचयचुदा[या दोषों के समूह से रहित [सुदपुण्णा] श्रुत में परिपूर्ण [मुणिणाहा] मुनियों के नाथ बहुश्रुत ज्ञाता गुरुजन [सोधयंतु] शुद्ध करें ।